AMOGHVARTA

ISSN : 2583-3189

महात्मा गांधी और नेताजी सुभाष चन्द्र बोस का राजनीति के प्रति दृष्टिकोण

ORIGINAL ARTICLE

Author
नवनीत कुमार
शोधार्थी
स्नातकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग,
विनोबा भावे विश्वविद्यालय
हजारीबाग, झारखण्ड, भारत

शोध सार

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के नेताओं में महात्मा गांधी और नेताजी सुभाष चन्द्र बोस प्रमुख थे। दोनों ही व्यवहारिक आदर्शवादी थे। दोनों अपने विचारों को कार्यरुप में तब्दील करना जानते थे। गांधीजी के साथ संबंधों के संदर्भ में नेताजी बहुत सौभाग्यशाली नहीं थे। नेताजी के राजनीति में प्रवेश के काल से ही दोनों के मध्य मतभेद बने रहे। दोनों के बीच मतभेद का कारण अपनी–अपनी पष्ठभूमि और अनुभव थे। आरम्भ मे तो मतभेद राष्ट्रीय आन्दोलन की रणनीति को लेकर रहा था परन्तु आगे चलकर स्वतंत्र भारत के प्रस्तावित पुनर्निमाण के बुनियादी तत्वों को लेकर भी उभरे। दोनों का कार्य–प्रणाली भले अलग–अलग थे पर दोनों का लक्ष्य समान था। दोनों के बीच अनेक समानताएं भी थी।

मुख्य शब्द

व्यवहारिक आदर्शवाद, अहिंसा, सत्याग्रह, आन्दोलन, स्वतंत्रता, लोकतंत्र.

महात्मा गाँधी और सुभाष चन्द्र बोस दोनों ही व्यावहारिक आदर्शवादी थे। दोनों ही अपने विचारों को कार्यरूप में तब्दील करना जानते थे। गाँधीजी का चिंतन और जीवन आदर्श व यथार्थ का समन्वय था। उनका मत था कि आदर्शवाद को यथार्थ रूप में परिणत होने के लिए व्यावहारिक होना आवश्यक है। वहीं बोस अपने जीवन में आदर्श के महत्व को स्वीकार करते थे। उनका मानना था कि आदर्श का अनुसरण न करने से जीवन में प्रगति करना असंभव है। इस संसार में प्रत्येक वस्तु नष्ट होती है, पर विचार, आदर्श और स्वप्न नष्ट नहीं होते। कोई व्यक्ति एक विचार के लिए मर सकता है किंतु यह विचार उसकी मृत्यु के बाद स्वयं को हजारों जीवनों में प्रस्फुटित करेगा। महात्मा गाँधी और सुभाष चन्द्र बोस दोनों ही अपने विचारों को कार्यरूप में तब्दील करना जानते थे। गाँधीजी का चिंतन और जीवन आदर्श व यथार्थ का भावात्मक सत्य को तब तक व्यर्थ मानते थे जब तक कि वह व्यक्तियों के जीवन में प्रकट न हो। हिंसा और कायरता के बीच चुनाव की स्थिति में गांधीजी हिंसा के पक्षधर थे। बोस अपने जीवन में आदर्श के महत्व को स्वीकार करते थे। उनका मानना था कि आदर्श का अनुसरण न करने से जीवन में प्रगति करना असंभव है। इस संसार में प्रत्येक वस्तु नष्ट होती है, किंतु विचार, आदर्श और स्वप्न नष्ट नहीं होते। कोई व्यक्ति एक विचार के लिए मर सकता है किंतु यह विचार उसकी मृत्यु के बाद स्वयं को हजारों जीवनों में प्रस्फुटित करेगा। इसी प्रकार विकास का क्रम निरंतर गतिशील है और एक पीढ़ी के विचार, आदर्श और स्वप्न आगामी पीढ़ी को उत्तराधिकार के रुप में मिल जाते हैं।

गाँधीजी के चिंतन पर भारतीय संस्कृति तथा भारतीय परम्पराओं का स्पष्ट प्रभाव था। वे भारतीय सभ्यता और संस्कृति के पक्षधर थे। उन्होनें अपनी पुस्तक हिंद स्वराज मे अनेक पाश्चात्य विद्वानों के उद्धरण दिए हैं जिनमें

भारतीय संस्कृति का प्रशस्ति गान किया गया है। गाँधीजी का मानना था कि पूरे दुनिया में भारत ही एक ऐसा देश है जो अहिंसा की कला सीख और सीखा सकता है। उनके मन में भारतीय संत–महात्माओं के प्रति अगाध श्रद्धा थी जिन्होंने हिंसा के बीच अहिंसा की खोज की, वे न्यूटन से अधिक प्रतिभाशाली थे। उन्हें भारतीय आध्यात्म की शक्ति में विश्वास था। उनका मत था कि दुनिया में किसी संस्कृति का भंडार इतना परिपूर्ण नहीं है जितना भारतीय संस्कृति का। वैदिक काल से हमारी सभ्यता चली आ रही है। जिस तरह गंगा जी में अनेक नदियां आकर समाहित हुई हैं, उसी तरह भारतीय संस्कृति में अनेक संस्कृतियों का मिश्रण है। उनका विचार था कि भारतीय सभ्यता की प्रवृत्ति नैतिकता के विकास की ओर है जब कि पश्चिमी सभ्यता अनैतिकता को प्रोत्साहन देती है।

गांधीजी ने अपने विचारों का स्रोत सनातन धर्म को माना है। उनकी दृष्टि में हिंदू धर्म समावेशक, व्यापक, सदा वर्तमान और परिस्थिति के अनुरूप नवीन रूप धारण करने वाला है। उन्होंने वेदों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत, गीता, कबीर, सूरदास, नरसिंह आदि प्राचीन व मध्ययुगीन महाकाव्यों का अध्ययन किया था और अपनी रचनाओं में उनके उद्धरण दिए है। ईश्वर, आत्मा, मानव जीवन का ध्येय, प्रार्थना, उपवास आदि के संबंध में गांधीजी के विचार एक सनातनी हिंदू के समान था।

बोस नें भी भारतीय संस्कृति व इतिहास का गहरा अध्ययन किया था। वे आधुनिकता के साथ अपने अतीत के गौरव को भूलने वालों मे से नहीं थे। वे मानते थे कि हमें भूतकाल को अपना आधार बनाना है। भारत की अपनी संस्कृति है। इस संस्कृति को अपनी सुनिश्चित धाराओं में विकसित होना है। हम संसार को बहुत कुछ दे सकते हैं विशेष कर दर्शन, साहित्य और कला के क्षेत्रों में। सांस्कृतिक अंतर्राष्ट्रीयता की दृष्टि से कभी–कभी राष्ट्रीयता पर प्रहार किया जाता है कि वह स्वार्थी और आक्रामक है। इस विषय में बोस का मानना था कि भारतीय राष्ट्रवाद संकुचित, स्वार्थी और आक्रामक नहीं है। यह मानवता के उच्च आदर्शों से प्रेरणा ग्रहण करता है।

गांधीजी की तरह बोस का भी ईश्वर, आत्मा, धर्म, नैतिकता, भक्ति, प्रेम, भजन, संयम, श्रद्धा आदि नैतिक धारणाओं में विश्वास था। उन्होंने इन नैतिक धारणाओं की व्याख्या भारतीय संदर्भों में की है। ईश्वर, आत्मा और धर्म संबंधी धारणाओं का अंतिम सत्य जो भी हो, धर्म में आरंभ से ही रूचि थी। इन धारणाओं के फलस्वरूप उन्होंने जीवन को गम्भीरता से ग्रहण करना सीखा। कॉलेज जीवन की दहलीज पर हीं सुभाष को अनुभव हुआ कि जीवन का कोई अर्थ और उद्देश्य है।

बोस के मुकाबले गांधीजी को राजनीति का लंबा अनुभव था। उनके उपर वेद, उपनिषद्, गीता, रामायण, महाभारत, धम्मपद, बाइबिल, रस्किन, थोरो और टालस्टाय का गहरा प्रभाव रहा था।[1] अपने 25 वर्ष के राजनीतिक जीवन में प्रायः 20 वर्ष उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में व्यतीत किया था। जहां उन्होंने ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध अपने सत्याग्रह रुपी अस्त्र का सफलतापूर्वक प्रयोग किया। इस क्रम में उनके विचारों में परिपक्वता आ चुकी थी। उनका मानना था कि भारत की निहत्थी जनता हिंसक क्रांति के लिए बिल्कुल तैयार नहीं है। वह शस्त्र–बल में ब्रिटिश साम्राज्य का किसी भी हाल में सामना नहीं कर सकती, लेकिन भारत के पास संख्या–बल था। उनकी जनसंख्या इतनी अधिक थी कि यदि एक बार भी उसने मन से ब्रिटिश सत्ता के प्रति डर निकल जाए, तो मुट्ठी भर अंग्रेज लोग उसके उपर अनिश्चित काल तक शासन नहीं कर सकते इसलिए गांधीजी के अनुसार स्वतंत्रता–आंदोलन का सबसे श्रेष्ठ उपाय था लोगों में जागृति पैदा करना। उन्हें उनकी वर्तमान दुर्दशा तथा विदेशी शासन की त्रुटियों से परिचित कराना, उनके सामने स्वतंत्र भारत का चित्र प्रस्तुत करना। गांधीजी का आंदोलन नए तरह का आंदोलन था जिसका कोई उदाहरण नहीं मिलता लेकिन, गौर से अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि राजनीतिज्ञों, राजनीतिक समीक्षकों और इतिहासकारों ने गांधीजी और बोस के मतभेदों को बहुत बढ़ा–चढ़ा कर प्रस्तुत किया है। गांधीजी और बोस में अनेक समानताएं थीं जिनकी उपेक्षा की गयी है।

गांधीजी और बोस दोनों के जीवन का राजनीतिक लक्ष्य समान था– भारत की स्वतंत्रता। अपने सपनों के भारत का चित्र खींचते हुए गांधीजी ने कहा था कि उसमें राजा से रंक तक सभी में समानता होनी चाहिए। उसमें कोई किसी का शत्रु न हो, सब अपना काम करें, कोई निरक्षर न रहे, उत्तरोत्तर सबके ज्ञान की वृद्धि होती जाए, सारी

प्रजा स्वस्थ हो, कोई भी दरिद्र न हो, श्रमिकों को बराबर काम मिलता रहे, उसमें जुआ, चोरी, मद्यपान और व्याभिचार न हो, वर्ग–विग्रह न हो और धनिक अपने धन का विवेकापूर्ण उपभोग करे। यह नहीं होना चाहिए कि मुट्ठीभर धनिक महलों में रहे और हजारों अथवा लाखों लोग हवा और प्रकाश विहिन घरों में। गांधीजी का स्वराज्य चौमुखी राज्य है। इसमें राजनीतिक स्वाधीनता, आर्थिक समानता, नैतिकता उत्थान और सामाजिक भाईचारा सम्मिलित है। गांधीजी ने सच्चे स्वराज्य की कुंजी सत्याग्रह, आत्म बल और दया बल माना है। उनके मत से इस बल को काम में लाने के लिए सर्वथा स्वदेशी बनने की जरूरत है। गांधीजी के स्वराज्य में गरीबों के लिए परमात्मा का अर्थ था सिर्फ दाल–रोटी।

बोस ने स्वतंत्र भारत का जो तस्वीर प्रस्तुत किया था, वह गांधीजी के सोंच से अधिक भिन्न नहीं था। उन्होंने एक ऐसा भारत की कल्पना की थी जो विदेशी नियंत्रण से पूरी तरह स्वतंत्र हो, जिसमें व्यक्ति के जीवन में पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त हो, जहां जाति–वर्ग और वर्ण संबंधी भेदभाव नहीं हो, जिसमें स्त्रियां को पुरूषों के समान ही अधिकार प्राप्त हो और वे पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिला कर समाज के उत्थान में लगी हुई हों, जिसमें आर्थिक असमानता का अभाव हो और सभी लोगों को शिक्षा तथा रोजगार की समान अवसर उपलब्ध प्राप्त हो, जिसमें कारीगारों और मजदूरों को उचित अवसर प्राप्त हो। उनके सपनों के भारत में किसी विदेशी शक्ति का कोई हस्तक्षेत्र नहीं होगा और सभी लोगों की बुनियादी आवश्यकताएं पूरी होंगी। यह समाज मानवता के लिए एक आदर्श स्थापित करेगा।

गांधीजी और बोस के बीच मतभेद का मुख्य कारण उनकी अपनी–अपनी पृष्ठभूमि और अनुभव थे। बोस की पृष्ठभूमि बंगाल के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक उत्थान की थी। उनपर स्वामी विवेकानन्द और अरविन्द घोष के ओजस्वी विचारों तथा उग्रवादी नेताओं की ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रति अविश्वास तथा घृणा का प्रभाव था। बंगाल में बींसवीं सदी के आरम्भ से ही सशस्त्र क्रांतिकारी आन्दोलन की परम्परा रही थी। सुभाष को क्रांतिकारी आंदोलन से सहानुभूति थी और इतिहास तथा क्रांति–साहित्य के अध्ययन के फलस्वरूप उनके मन में यह बात बैठ गई थी कि कोई राष्ट्र सशस्त्र विद्रोह के बिना स्वतंत्रता प्राप्त नहीं कर सकता। आयरलैण्ड के स्वतंत्रता–संग्राम से वे प्रभावित थे और भारत के राष्ट्रीय आंदोलन की अनेक स्थितियों का उन्होंने आयरलैण्ड के स्वतंत्रता–संग्राम के सादृष्य माना था। इटली के क्रांतिकारी नेता मेजीनी और गैरीबाल्डी तथा तुर्की के मुस्तफा कमाल पाशा ने स्वतंत्रता आंदोलन के बारे में उन्हें प्रेरित किया था। भारतीय राजनीति में प्रवेश करते समय उनकी आयु 24 वर्ष की थी और युवकोचित उत्साह के कारण उनमें अधीरता का भाव भी था। वे इंडियन सिविल सर्विस की सुविधा संपन्न नौकरी को छोड़ कर देश सेवा के लिए राजनीति के मैदान में उतरे थे और प्रथम विश्वयुद्ध के बाद की बदलती हुई विश्व–राजनीति उनकी आंखों के सामने थी। उन्होंने भारत को उसके अपने इतिहास के आलोक में ही नही, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के परिप्रेक्ष्य में भी परखा था।

बोस ने गांधीजी से पहली मुलाकात लंदन से भारत वापस आने पर 16 जुलाई, 1921 को बम्बई में की। वहां गांधी जी से असहयोग आंदोलन के बारे में कई प्रश्न पूछे। गांधीजी के उत्तरों से बोस की शंकाओं का समाधान नहीं हुआ। उन्हें लगा कि गांधीजी के मन में अपनी योजना की स्पष्ट तस्वीर नहीं है। इसके पश्चात गांधीजी के नेतृत्व के प्रति उनके मन मे अंत तक संदेह बना रहा। उन्होंने मुख्यतः निम्न आधारों पर गांधीजी का विरोध कियाः–

- गांधीजी मूलतः संत थे, राजनीतिज्ञ नहीं। वे राजनीति और राजनय के दांव –पेचों को पूरी तरह नहीं समझते थे।
- गांधीजी अपने विरोधी पर भी पूरा विश्वास करते थे।
- गांधीजी छिपा कर कुछ नही रखते थे। वे अपना मन पूरी तरह अपने विरोधियों के आगे भी खोल कर रख देते थे।
- गांधीजी सभी वर्गों के सहयोग मे आस्था रखते थे। वे धनिकों की कुटिलता को नही समझते थे।
- गांधीजी संत और राजनीतिज्ञ दोनों की भूमिका निभाना चाहते थे।
- गांधीजी ने राष्ट्रीय आंदोलन के अंतर्राष्ट्रीय पक्ष की ओर ध्यान नही दिया। जब वे दूसरे गोलमेज सम्मेलन

में भाग लेने के लिए लंदन गए थे, उन्होंने यूरोपीय देशों के प्रमुख राजनेताओं से मिलने की कोशिश नही की। ये राजनेता अंतर्राष्ट्रीय लोकमत को भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के पक्ष में मोड़ने में सहयोग दे सकते थे।

- गांधीजी ने अनेक बड़े राजनीतिक निर्णय अपनी अंतरात्मा की आवाज के अनुसार किए थे। राजनीति आध्यात्म की नही, यथार्थ की दुनिया है। इसमें हर कदम वस्तुगत परिस्थितियों पर आधारित होना चाहिए।
- अपनी सारी विनम्रता के बावजूद गांधी जी में फौलाद का तत्व था। उन्होंने अपने से निर्बल विरोधियो को कुचल डालने की कोशिश की और अपने से सबल विरोधियों के साथ समझौता किया।

यद्यपि बोस ने स्वतंत्रता आंदोलन में गांधीजी की महत्वपूर्ण देन को स्वीकार किया है, लेकिन इस आंदोलन की अनेक घटनाओं के बारे में गांधीजी की सोंच और प्रतिक्रिया की आलोचना की है। कुछ मुख्य घटनाएं हैः—जब गांधीजी ने असहयोग आंदोलन आरम्भ किया तो उनके सामने अपनी योजना का पूरा खाका नही था। उन्होंने एक वर्ष में स्वराज प्राप्त करने का वचन दिया था जो पूरा नहीं हुआ। चौरी—चौरा दुर्घटना के कारण समूचे आंदोलन को स्थगित कर देना उचित नहीं था। गांधीजी ने असहयोग आंदोलन में खिलाफत के प्रश्न को मिला दिया था। खिलाफत का प्रश्न तुर्की का प्रश्न था। उसे भारतीय राजनीति में लाने का अर्थ था मुस्लिम कट्टरता को प्रोत्साहन। गांधीजी द्वारा चर्खे और सूत की कताई पर जोर देने से भारत की आर्थिक समस्या का समाधान नहीं हो सकता था।

1928 में कलकत्ता में पंडित मोतीलाला नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ था। बंगाल प्रांतीय कांर्ग्रेस ने भारत के लिए पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास किया था। बोस चाहते थे कि कलकत्ता कांग्रेस में पूर्ण स्वराज का प्रस्ताव पास कर दें। जवाहर लाल नेहरू ने बोस के प्रस्ताव का समर्थन किया, लेकिन गांधीजी ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। गांधीजी के विरोध के कारण बोस का प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया। अगले वर्ष 1929 में लाहौर अधिवेशन में गांधीजी ने स्वयं पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। इस अवसर पर बोस ने कहा कि कांग्रेस को देश में समानांतर सरकार की स्थापना करनी चाहिए। गांधीजी के विरोध के कारण बोस का संशोधन अस्वीकृत हो गया।

क्रांतिकारियों के प्रति गांधीजी के रूख से बोस प्रसन्न नहीं थे। 13 सितम्बर, 1929 को लाहौर जेल में भूख हड़ताल के कारण क्रांतिकारी जतिन दास की मृत्यु हो गई। 16 सितम्बर, 1929 को कलकत्ते में जतिन दास की शव—यात्रा निकली। देशबंधु चितरंजन दास की मृत्यु के बाद कलकत्ते की यह सबसे लम्बी शवयात्रा थी। गांधी जी ने जतिन दास की शहादत के बारे में कुछ नहीं कहा। इसी तरह जब गांधीजी और लार्ड इरविन में सुलह के लिए बातचीत हो रही थी, सुभाष की राय थी कि गांधीजी को समझौते की एक शर्त यह रखनी चाहिए कि सरदार भगतसिंह को फांसी न दी जाए। बोस के विचार से देश की स्थिति उस समय कुछ ऐसी थी कि सरकार को यह शर्त माननी पड़ती, लेकिन गांधीजी ने ऐसा कुछ नहीं किया और सरदार भगतसिंह को फांसी दी गई। 3 मार्च, 1931 को गांधीजी और लार्ड इरविन के बीच जो समझौता हुआ था, वह सुभाष को उचित नहीं लगा था। उनके विचार से कांर्ग्रेस को इस समझौते से कोई लाभ नहीं हुआ था। कांग्रेस के अन्य नेताओं की भी यही राय थी, लेकिन गांधीजी के दबाव के कारण यह समझौता स्वीकार कर लिया गया।

1931 में गांधीजी ने कांग्रेस के एकमात्र प्रवक्ता के नाते दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लिया। बोस ने गोलमेज परिषद में गांधीजी की भूमिका की आलोचना करते हुए कहा कि सम्मेलन में गांधी जी को अकेले नहीं जाना चाहिए था। उन्हें अपने साथ कुछ अन्य योग्य कांग्रेसियों को ले जाना चाहिए था। गांधी जी ने गोलमेज सम्मेलन के काम की ओर पूरा ध्यान नहीं दिया। उनका काफी समय और शक्ति धार्मिक और निरर्थक प्रश्नों की चर्चा में निकल जाती थी। बोस का विचार तो यहां तक था कि कांग्रेस को गोलमेज सम्मेलन में भाग ही नहीं लेना चाहिए था।

1938 में बोस हरिपुरा कांग्रेस का अध्यक्ष निर्वाचित हुए। 1939 में वे दुबारा अध्यक्ष पद के लिए खड़े हुए। गांधीजी ने उनके खिलाफ डॉ. पट्टाभि सीतारमैया को अध्यक्ष पद के लिए खड़ा किया। निर्वाचन में बोस विजयी हुए। गांधीजी ने सीतारामैया की पराजय को अपनी पराजय बताया। गांधी जी के रूख को देखते हुए कांग्रेस के पुराने

नेताओं ने कांग्रेस कार्यसमिति से इस्तीफा दे दिया। बोस ने गांधीजी से सहयोग की प्रार्थना की। उन्हें कई पत्र लिखे लेकिन गांधीजी ने बोस को कोई सहयोग नहीं दिया। अंततः विवश होकर बोस को 29 अप्रैल, 1939 को कांग्रेस अध्यक्ष पद से इस्तीफा देना पड़ा। उनके स्थान पर डॉ. राजेन्द्र प्रसाद कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। इन सारे प्रकरण में गांधी जी की भूमिका की प्रायः आलोचना की गई है। बोस लोकतांत्रिक ढ़ंग से दुबारा कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। गांधीजी को सीतारामैया की हार को अपनी हार मानने का कोई कारण न था। उन्हें व्यक्तिगत आग्रहों से उपर रहना चाहिए था। बोस ने कांग्रेस के भीतर ही अपने एक नए वामपक्षी दल फारवर्ड ब्लॉक का गठन किया और अपने कुछ वक्तव्यों में कांग्रेस की कार्य–प्रणालियों की आलोचना की। इस पर कांर्ग्रेस कार्य–समिति ने उन्हें अनुशासन–भंग के अपराध में बंगाल प्रांतीय कांग्रेस समिति के अध्यक्ष पद से एवं कांग्रेस की किसी भी निर्वाचित समिति का सदस्य होने से वंचित कर दिया। अनेक समीक्षकों की राय में बोस को यह दंड इसलिए दिया गया था क्योंकि उन्होंने गाँधीजी का विरोध किया था।

सितम्बर, 1939 में दूसरा विश्वयुद्ध आरम्भ होने पर ब्रिटिश सरकार ने भारत के निर्वाचित प्रतिनिधियों और सार्वजनिक नेताओं से विचार–विमर्श किए बिना ही भारत को युद्ध में भागीदार बना दिया था। राष्ट्रीय नेताओं को इससे आघात पहुंचा था। बोस का मत था कि यह इंगलैंड के लिए संकट का समय है और भारत को इससे लाभ उठा कर ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध व्यापक जन आंदोलन आरम्भ करना चाहिए। वे इस संबंध में गाँधीजी से बात करने के लिए जून, 1940 में सेवाग्राम भी गए थे। उनकी गाँधीजी से विस्तार से बात हुई थी। गाँधीजी का मत था कि वे जल्दी में कोई काम नहीं कर सकते। देश जन–आंदोलन के तैयार नहीं है। यह गाँधीजी और बोस की अंतिम भेंट थी।

बोस का गाँधीजी तथा कांग्रेस के अन्य सत्ताधारी नेताओं के ऊपर आक्षेप था कि वे सुधारवादी और नरम मनोवृत्ति के हैं। गाँधीजी को इस आरोप पर कोई आपत्ति न थी। उनका कहना था कि दादाभाई नौरोजी एक महान सुधारवादी थे। गोपाल कृष्ण गोखले नरम दल के महान प्रतिनिधि थे। इसी तरह बम्बई प्रांत में फिरोजशाह मेहता और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी भी नरम थे। अपने समय में वे भी राष्ट्र के लिए लड़ने वाले थे। हम उन्हीं के उत्तराधिकारी हैं। वे न होते तो हम भी न होते सुभाष आगे बढ़ने की अधीरता में यह भूल जाते हैं कि मेरे जैसे लोग सुधारवादी और नरम मनोवृत्ति के होते हुए भी उनके साथ देशभक्ति में होड़ लगा सकते हैं।[2]

गाँधीजी और बोस दोनो हीं स्वतंत्रता–सेनानी होने के साथ–साथ विचारक भी थे उनके मन में स्वतंत्र भारत की रूपरेखा थी। गांधीजी कोई सिद्धान्तवादी राजनीति–दार्शनिक नहीं थे जो सदा पुस्तकों में डूबे रहते हों और चिंतन के जाले बुनते हों। वे आरम्भ से ही व्यावहारिक सुधारक और कर्मठ कार्यकर्त्ता रहे थे।

यह सच है कि बोस भी नैतिक और धार्मिक आस्थाओं के व्यक्ति थे, लेकिन उनकी समाज–रचना में इन मूल्यों को गांधीजी की भांति मूलग्राही स्थान प्राप्त नहीं है। उनकी समाज–रचना समाजवादी आधारों पर है। इस समाज–व्यवस्था में राज्य का कार्यक्षेत्र व्यापक है, देश के योजनाबद्ध आर्थिक विकास पर बल है, सुसंगठित राजनीतिक दल की महत्ता है, केंद्रीकरण की अनिवार्यता है और साध्य–साधन अथवा हिंसा–अहिंसा का कोई सैद्धांतिक तर्क–वितर्क नहीं है।बोस ने यह अवश्य कहा था कि उनका समाजवाद देश की परिस्थितियों के अनुरूप होगा लेकिन यह समाजवाद अन्य समाजवादी देशों के समाजवाद से किस प्रकार भिन्न होगा इसका स्पष्टीकरण बोस की रचनाओं में नही मिलता। बोस की आजाद हिंद फौज में सांप्रदायिक एकता की भावना अवश्य थी। उसमें अनुशासन भी था। उनका दृष्टिकोण अपने सहयोगियों के प्रति आदर का था। उनके प्रस्तावित राज्य में राष्ट्रीय सेना का प्रमुख स्थान था। गांधीजी की भांति व्यक्ति के व्यापक रूपांतर, मानवी हृदय परिवर्तन, और अपने विरोधी के प्रति भी अगाध स्नेह तथा उसके लिए कष्ट सहन की धारणा बोस के चिंतन में नहीं पाई जाती।

राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति गाँधीजी की नीति की आलोचना करते हुए भी बोस ने भारतीय जनता के उत्थान में गाँधीजी के योगदान को अनेक स्थलों पर सराहा है। सुभाष ने 1933 में तृतीय भारतीय राजनीतिक सम्मेलन, लंदन में अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा थाः– ''महात्मा गांधी एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे जो जनता के सर्वसम्मत प्रतिनिधि के

रूप में खड़े हो सके और उसको एक विजय से दूसरी विजय की ओर ले जा सके। इसमें कोई संदेह नहीं कि पिछली दशाब्दी में भारत की शताब्दी के बराबर आगे बढ़ा है।''[3]

बोस ने 19 फरवरी, 1938 को कांग्रेस के 51वें अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था –''इस अवसर पर मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि महात्मा गांधी अनेक वर्षों तक हमारे बीच बने रहे। भारत उन्हें नही खो सकता, कम से कम इस समय तो बिल्कुल नहीं। हमें लोगों में एकता बनाए रखने के लिए उनकी जरूरत है। हमें अपने संघर्ष को कटुता और विद्वेष से दूर रखने के लिए उनकी जरूरत है। हमें भारत की आजादी के लिए उनकी जरूरत है। इससे भी बढ़ कर बात यह है कि हमे मानवता के लिए उनकी जरूरत है।''[4]

पुनः बोस ने 2 अक्टूबर, 1943 को गाँधीजी की पचहत्तरहवीं वर्षगांठ पर बैंकॉक से अपने प्रसारण में कहा था–''बीस वर्षों से भी अधिक समय से महात्मा गांधी भारत की मुक्ति के लिए कार्य कर रहे हैं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि यदि वह 1920 में संघर्ष का नया हथियार लेकर सामने नहीं आते तो संभवतः भारत अब तक परतंत्र ही रहता। भारत की आजादी के लिए उनकी सेवाएं अनुपम और अद्वितीय है। वैसी ही परिस्थितियों में कोई भी अकेला व्यक्ति इतना नहीं कर सकता था।"[5]

6 जुलाई, 1944 को बोस ने अपने एक प्रसारण गाँधीजी को बताया था कि उन्होंने भारत क्यों छोड़ा और किन परिस्थितियों में आजाद हिंद फौज का संगठन किया। बोस ने गाँधीजी को राष्ट्रपिता के नाम से संबोधित किया था और आजादी के संघर्ष में उनसे आशीर्वाद की प्रार्थना की थी। उन्होंने कहा था–''हमारे राष्ट्र के पिता भारत के इस पवित्र स्वतंत्रता– युद्ध में आपके आशीर्वाद तथा शुभेच्छाओं की हमें आवश्यकता है।''[6]

गाँधीजी के व्यक्तित्व का एक विशेष पहलू यह था कि उनकी दृष्टि समूचे राष्ट्र पर रहती थी। राष्ट्रीय आंदोलन में जो व्यक्ति उभर कर सामने आए, गाँधीजी ने उन्हें सदा प्रोत्साहन दिया। बोस की ओर उनका ध्यान 1925 में आकृष्ट हो गया था। 10 अक्टूबर, 1925 को अपनी शुभकामनाएं भेजते समय गाँधीजी ने बोस की गिरफ्तारी और बिना मुकद्दमा चलाए, उन्हें जेल में रखने का उल्लेख किया था।[7]

1928 तक बोस बंगाल और भारत की राजनीति में प्रतिष्ठित हो गए थे। 31 मार्च, 1928 को गाँधीजी ने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद से बोस को एक पत्र लिखा था जिसमें इस बात पर खेद प्रकट किया था कि उनसे मद्रास में भेंट नहीं हो सकी थी। गाँधीजी ने इस पत्र में बोस से पूछा था कि वे सिर्फ ब्रिटिश सामान के वहिष्कार की ही क्यों बात कर रहे हैं अन्य विदेशी काल के वहिष्कार की बात क्यों नही करते। गाँधीजी ने बोस के स्वास्थ्य के बारे में भी जानना चाहा था।"[8]

1939 में बोस गाँधीजी के विरोध के बावजूद पुनः कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हो गए थे। इससे गाँधीजी को और उनके निकट सहयोगियों को धक्का लगा था। इस चुनाव में कांग्रेस के सभी वामपंथी तत्वों ने बोस के पक्ष में मत दिए थे। बोस की विजय पर गाँधीजी ने एक वक्तव्य जारी किया जिसमें उन्होंने कहा ''पट्टाभि सीतारमैया की पराजय उनकी पराजय है और बोस की विजय से यह बात स्पष्ट हो गई है कि कांग्रेस के प्रतिनिधि मेरे सिद्धांतों और नीति का अनुमोदन नही करते। मुझे अपनी पराजय पर खुशी है। सुभाष बाबू अपना अनुकूल मंत्रिमण्डल बना सकते है। वे अपने कार्यक्रम को बिना किसी बाधा के लागू कर सकते है। सुभाष बाबू देश के शत्रु नहीं है। उन्होंने देश के लिए कष्ट सहा है। उनकी सम्मति में उनकी अपनी नीति और कार्यक्रम सबसे अधिक प्रगतिशील और साहसपूर्ण है। अल्पमत को उनके काम में रूकावट नही डालनी चाहिए। जब वह सहयोग न कर सके, उसे अनुपस्थित रहना चाहिए।''[9]

गाँधीजी का यह पत्र बोस के लिए एक प्रकार की चुनौती था। गाँधीजी ने अपने इस पत्र में स्पष्ट कर दिया है कि बोस ने उनके निकट सहयोगियों के लिए जिस प्रकार की शब्दावली का प्रयोग किया था, उससे वे प्रसन्न न थे। बोस को आजादी थी कि वे अपने मन के अनुसार कार्यसमिति बना सकते थे। गांधीजी की स्वयं बोस की नीतियों और कार्यक्रमों में आस्था न थी। बोस अपनी कार्य–समिति न बना सके। जिन वामपंथी तत्त्वों ने निर्वाचन

में बोस का साथ दिया था, गाँधीजी के विरोध के कारण उन्होंने बोस का साथ छोड़ दिया था। विवश होकर बोस को कांग्रेस के अध्यक्ष पद से त्याग–पत्र देना पड़ा। कांग्रेस पर गाँधी जी का वर्चस्व कायम रहा। दिसम्बर, 1940 में सुभाष बोस जेल से छूट कर अपने घर में नजरंबद थे। इसी समय गांधीजी ने अपना व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन वापस ले लिया। बोस ने उन्हें पत्र लिखा था कि वे अपने सविनय अवज्ञा आंदोलन को व्यापक रूप दे। बोस ने अपने पत्र में कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना आजाद की भी आलोचना करते हुए कहा कि उन्होंने सुभाष नियंत्रित बंगाल प्रांतीय कांग्रेस समिति के खिलाफ और बंगाल विधानसभा में शरत बोस के गुट के खिलाफ कार्यवाही की है। गांधीजी ने 29 दिसम्बर, 1940 को वर्धा से सुभाष बोस के पत्र का उत्तर दिया था जिसमें बोस की आलोचनाओं का समाधान करते हुए लिखा था ''तुम उदंड हो, चाहे बीमार हो या स्वस्थ। हंगामा खड़ा करने से पहले स्वस्थ हो जाओ। मैनें (आजाद के) निर्णय के बारे में पढ़ा। मुझे उसका अनुमोदन करना पड़ा। मुझे आश्यर्च होता है कि तुम अनुशासन और अनुशासनहीनता में भेंद नही कर सकते ..... मुझे मालूम है कि बंगाल में तुम दोनो के बिना कारगर ढ़ंग से काम करना मुश्किल है। इस भारी मुश्किल के होते हुए भी कांग्रेस को काम चलाना है..... जहां तक तुम्हारे ब्लॉक का सविनय अवज्ञा में शामिल होने का प्रश्न है, तुम्हारे और अपने मूलभूत मतभेदों को देखते हुए यह संभव नहीं है। जब तक हममें से एक दूसरे के विचारों को नहीं मान लेता, तब तक हमें अलग–अलग कश्तियों में सवारी करनी होगी भले ही हमारा लक्ष्य समान लग सकता है। फिर भी हम एक दूसरे के प्रति प्रेम रख सकते हैं और जैसे कि हम हैं, एक ही परिवार के सदस्य बने रह सकते हैं।''[10]

जुलाई, 1940 में सुभाष बोस की गिरफ्तारी पर कांग्रेस कार्यसमिति ने कोई विरोध प्रकट नहीं किया। इस बारे में गांधीजी का कहना था कि सुभाष ने कांग्रेस की आज्ञा से सराकरी कानून भंग नहीं किया। उन्होंने तो खुद कार्यसमिति की आज्ञा का भी साफ ऐलान के साथ उल्लंघन किया था। सुभाष बाबू ने अपनी रणनीति खूब सोच–विचार के बाद और साहस के साथ गढ़ी है। उनके ख्याल में उनका रास्ता सर्वोत्तम है। वह ईमानदारी से यह मानते हैं कि कार्यसमिति गलत रास्ते पर हैं और टाल–मटोल की नीति से कुछ भला होने वाला नही। बोस ने गांधीजी से साफ शब्दों में कह दिया कि जो काम कार्यसमिति न कर सकी, वह उसे कर के बतायेंगे। उनका धैर्य चला गया था और विलंब वह सहन नहीं कर सकते थे। गांधीजी का दृष्टिकोण थाः–''मैंने उनसे कहा कि अगर उनकी योजना के परिणामस्वरूप मेरी जिंदगी में स्वराज्य मिल गया तो सबसे पहले उन्हें मेरी तरफ से धन्यवाद का तार मिलेगा और अगर उनके उठाए हुए युद्ध के दौरान मेरा विचार उनके जैसा हो गया तो मैं खुले दिल से उनका नेतृत्व करने का ऐलान करूंगा और उनके झंड़े के नीचे बतौर एक सिपाही के आकर खुद भरती हो जाऊंगा लेकिन इसके साथ–साथ मैंने उन्हें यह चेतावनी भी दी थी कि वे गलत रास्ते पर चले है।''[11]

इस मौके पर गांधीजी ने बोस को यह राय तक दी थी कि वह कांग्रेस मे से बिल्कुल निकल जाये लेकिन गांधीजी की यह सलाह बोस को जंची नहीं और वे कांग्रेस में बने रहे।

सुभाष बोस के जर्मनी चले जाने के बाद गांधीजी के मन बोस के प्रति नरमी आ गई थी। मौलाना अबुल कलाम आजाद ने अपनी पुस्तक 'इंडिया विनस फ्रीडम' में इस तथ्य की पुष्टि की है। लुई फिशर से बात करते हुए गांधीजी ने 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन आरंभ करने से पहले सुभाष बोस को देशभक्त शिरोमणि कहा था। बोस की मृत्यु के बाद गांधीजी ने उनको भावभीनी श्रद्धांजलि भेंट की थी। उनके शब्दों में–''नेताजी के जीवन से जो सबसे बड़ी शिक्षा ली जा सकती है वह है उनके अपने अनुयाइयों में ऐसे भावना की प्रेरणाविधि, जिससे कि वह सब सांप्रदायिक तथा प्रांतीय बंधनों से मुक्त रह सके और एक समान उद्देश्य के लिए अपना रक्त बहा सके। उनकी अनुपम सफलता उन्हें निस्संदेह इतिहास के पन्नों मे अमर रखेगी।''[12]

आजाद हिंद फौज के अनेक अफसर भारत लौटने पर गांधीजी से मिले थे। उन्होंने निर्विवाद रूप से गांधीजी से कहा कि नेताजी का प्रभाव उन पर जादू सा काम करता था। वह नेताजी के अधीन एकमात्र भारत की आजादी प्राप्त करने के उद्देष्य से काम करते थे। उनके दिलों में सांप्रदायिक और प्रांतीय या और कोई भी भेदभाव कभी भी अंकुरित नहीं हुआ था। गांधीजी की दृष्टि में नेताजी का सबसे महान और स्थिर रहने वाला कार्य था सब प्रकार

के जातीय और वर्णभेद का उन्मूलन। उन्होंने अपने आपको कभी सवर्ण हिन्दू नहीं समझा। वह पूरे भारतीय थे। नेताजी ने अपने अनुगामियों में भी यही आग प्रज्जवलित की। नेताजी के अनुगामियों ने आपस के सभी भेदों को भूल कर एक मन से देश की स्वतंत्रता के लिए काम किया।[13]

1947 में पाकिस्तान के कबायली लुटेरों ने कश्मीर पर आक्रमण किया। सुनने में आया कि कबायली आक्रमणकारियों की इस फौज में सुभाष बोस की आजाद हिंद फौज के भी दो अफसर शामिल थे। गांधीजी को यह बात बहुत चुभी थी और उन्होंने 2 नवंबर, 1947 को अपने प्रार्थना–प्रवचन में इसका उल्लेख किया था। गांधीजी ने इन अफसरों से कहा ''वे सुभाष बाबू के नाम को क्यों डुबोते हैं। सुभाष बाबू तो ऐसे थे नही। उनसे साथ हिन्दू, मुस्लमान, सिख, पारसी, ईसाई, हरिजन आदि सब रहते थे। वहां तो हिंदुस्तानियों में जात–पात का कोई भेदभाव था ही नही। ये तो सब अपने धर्म पर कायम थे लेकिन सुभाष बाबू ने उनके चित्त पर कब्जा कर लिया था। सुभाष बाबू ने यह कभी नहीं कहा कि यदि कोई आजाद हिंद फौज में शामिल नहीं होता है तो उसे काट डाला जाए। सुभाष लोगों को इस तरह काट कर हिन्दुस्तान को रिहाई दिलाने वाले नहीं थे। सुभाष बोस इस तरह से बड़े हुए और उन्होंने बड़प्पन पाया। वह तो मर गए, लेकिन उनका नाम नहीं मरा, काम नहीं मरा।"[14]

निष्कर्ष

अतः स्पष्ट होता है कि महात्मा गांधी और सुभाष चन्द्र बोस के बीच कार्य प्रणाली को लेकर अनेक बार मतभेद होते रहे, लेकिन दोनों के मन में एक दूसरे के प्रति अपार श्रद्धा थी। दोनों के मन में स्वतंत्रता के बाद भारतीय नवनिर्माण को लेकर अपने–अपने विचार थे। दोनों ने भारतीय स्वतंत्रता के लिए अपना सर्वस्व न्योच्छावर कर दिया।

संदर्भ सूची

1. गुप्त, विश्व प्रकाश, गुप्त, मोहिनी, (2008) *'सुभाष चन्द्र बोसः व्यक्ति और विचार'* राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली पृ. 261।
2. *हरिजन,* 2 अगस्त, 1942।
3. शरण, गिरिराज, (1982) *'सुभाष ने कहा था'* प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 50।
4. ग्रोवर, विरेन्द्र, (सं.) (1990) *'सुभाष चंद्र बोसः ए बायोग्राफी ऑफ हिज विजन एण्ड आइडियाज'* दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ. 302।
5. वही, पृ. 375–376।
6. अहलूवालिया, बी. के. एण्ड अहलूवालिया, शशि, (1982) *'नेताजी एण्ड गांधी'* इंडियन एकेडमिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृ. 219।
7. महात्मा गांधी 'कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी' वो.–28 पब्लिकेशन डिवीजन सूचना व प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. 311।
8. वही, वो.–36 पृ. 167।
9. वही, वो.–VIII पृ. 359–60।
10. वही, वो.–LXXIII पृ. 264।
11. महात्मा गांधी, (1951) *'मेरे समकालीन'* सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, पृ. 392।
12. वही, पृ. 393।
13. वही, पृ. 394।
14. वही, पृ. 395।

––==00==––